योगवाणी

वर्ष ५१, जून २०२६

योगवाणी

वर्ष ५१, जून, २०२६

आर.एन.आई. २९०७५/७६

यदि कोई कितना ही बड़ा ज्ञाननिष्ठ, विरक्त, धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय अथवा देवता ही क्यों न हो, योग ज्ञान के बिना कोई भी जीव मोक्ष-पद प्राप्त नहीं कर सकता।

योग बीज

वार्षिक सदस्यता : १२५/-
द्विवार्षिक सदस्यता : २५०/-
पंचवार्षिक सदस्यता : ६००/-
आजीवन सदस्यता : १२००/-
एक प्रति का मूल्य : १५/-

मुद्रक:
मोती पेपर कनवर्टर्स
डी-४/१, सेक्टर १३
गीडा, गोरखपुर
दूरभाष : ०५५१-२५८००९३

विषयानुक्रम

पृष्ठ

जीवनामृत

श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ०२

योगामृत ०३

गोरखवाणी ०४

नाथपन्थ एवं दर्शन

योग-सन्देश ०५

नवनाथ कथा- मत्स्येन्द्रनाथ ०७

योगी सम्प्रदाय और उसका आदर्श ०९
- योगी आदित्यनाथ

महर्षि पतंजलि एवं नाथ संप्रदाय के योगी स्वात्माराम की दृष्टि में योग ११
- डॉ० अरविन्द कुमार तिवारी

धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्म

भरशिव-नाग परंपरा' का गोरखपुर मण्डल के सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में योगदान २०
- आशीष कुमार

हमारा जीवन एवं स्वास्थ्य

मानव जीवन के लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के उपाय- डॉ० राकेश कुमार मिश्र २४

पर्व विशेष

श्रीरामचरितमानस में वट वृक्ष की बहुलता २६
- रामजन्म सिंह

योग: स्वस्थ जीवन से परमात्मा के मिलन तक ३०
- आचार्य नवनीत

आयोजन विशेष ३५
- डॉ0 राकेश कुमार तिवारी

चतुर्थ आवरण

पुनर्नवा

॥ ॐ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

योगवाणी

(धर्म-संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान मासिक पत्रिका)

संस्थापक-सम्पादक

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ

प्रधान-सम्पादक

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ

प्रबन्ध-सम्पादक

डॉ. प्रदीप कुमार राव

सम्पादक

डॉ. प्रांगेश कुमार मिश्र

प्रकाशक

श्री गोरखनाथ मन्दिर

गोरखपुर - २७३०१५

web: www.gorakhnathmandir.in

E-mail: yogvanigmndr@gmail.com

दूरभाष : (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४

९४५२५६९७१७ - ८८५८८६१३५३

॥ श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ॥

श्रीनाथाय नमो गुरवे

गकारादिगोरक्षसहस्रनाम

देयाद्वो मङ्गलानां, भुवि ततिमनिशं, यस्य दृक्पातमात्रं
प्रादुर्भूतप्रभावाद्रचयति भुवनं, विश्वयोनिः समग्रम् ।
क्षोणीभारं विधत्ते, शिरसि फणिपतिः, शम्भुरत्ति प्रपञ्चं,
सोऽयं श्रीआदिनाथः, सुरनिकरशिरोरत्ननीराजिताङ्घ्रिः ॥ १ ॥
अहो ! नुमः श्रीयुतपादपद्मं, मत्स्येन्द्रनाथस्य मनोज्ञमूर्तेः ।
सापत्न्यभावं प्रविहाय यत्र, चक्रे निवासं कमला च गीश्च ॥ २ ॥
यश्चादौ पद्मयोनिर्विसृजति निखिलं, स्वस्वकर्मानुकूलं,
यश्चान्ते रुद्रनामा, प्रलय इव जनं, मोहलीनं करोति ।
यः स्थाने विष्णुदेहस्त्रिजगदवनकृत्, सिद्धयोगात्मकोऽसौ
गोरक्षो वाञ्छितानां ततिमनवरतं, वः प्रदेयात् त्रिमूर्तिः ॥ ३ ॥

अथ सहस्रनाम

गोरक्षनिपुणो गुह्यो, गोभरार्तिनिषूदनः।
गीर्वाणारातिविद्रावी, गोपदानुगतिर्गुणी ॥४॥
गोसास्वान् गण्डमुद्रश्च, गुणवद्व्यूहमानदः।
गोवृत्तिदश्च गोराजो, गोलोकावासिपूजितः॥५॥

योगामृत

गोरक्ष उवाच :

गुरूजी ! कौन सोवे ? कौन जागे ? कौन रूप से आपा जोवे ?
कौन रूप में कैसे रहे ? सतगुरू होय सो बुझाय कहे ॥ ६३ ॥

भावार्थ- हे गुरु! वास्तव में सोता कौन है और जागता कौन ? अपना स्वरूप कहाँ देख सकता है और किस स्वरूप में युगान्तर काल तक अटल रहे।

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! शब्द जागे, शक्ति सोवे, आदि रूप में आपा जोवे।
अरूप रूप में जुगजुग रहे, ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ॥ ६४ ॥

भावार्थ- हे शिष्य! शब्द जागता है, शक्ति सुप्त है। अदृष्ट अमुष्ट स्वरूप में आपको ज्ञान से मार्ग समदृष्टि से देखे और अटल रूप वर्ण रहित युगान्तर काल तक स्थिर रहता है।

गोरक्ष उवाच :

गुरूजी ! कौन मुख रहनी ? कौन मुख ध्यान ?
कौन मुख अमीरस ? कौन मुख प्रान ?
कौन मुख छेद विदेही रहे ? सतगुरू होय सो बुझाय कहे ॥ ६५ ॥

भावार्थ- हे भगवान्! किसके सन्मुख रहना और किसके सन्मुख ध्यान, अमृत प्राप्ति, पीना तथा किस सन्मुखता को छेदने से शरीर रहे सो कहिये।

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! गुरूमुख रहनी शक्ति मुख ध्यान,
गगन मुख अमीरस चेतन मुख प्रान।
आशा मुख छेद विदेही रहे, ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ॥ ६६ ॥

भावार्थ- हे शिष्य! साधना के सन्मुख रहना ,भक्ति (उपासना) के सन्मुख रहकर करना। गुरु के सन्मुख से ज्ञान अमृत चेतन (सावधान) सन्मुख रहकर पीना और आशा मुख को मर्दन करके अमर रहिए।

(गोरक्ष-मत्स्येन्द्र संवाद)

गोरखवाणी

महंमद महंमद न करि काजी महंमद का विषम विचारं ।
महंमद हाथि करद जे होती लोहै घड़ी न सारं ॥ ९ ॥

हे काजी! परमात्मा के संदेशवाहक रसूल मुहम्मद साहब के विचार बड़े ही निगूढ़ और रहस्यपूर्ण थे । उनके पवित्र शब्दों का रहस्य अत्यंत मार्मिक है । मुहम्मद साहब ने तो भगवत् प्रेम का मार्ग प्रशस्त किया, उन्होंने जीव की हिंसा का प्रतिपादन नहीं किया । उनके हाथ में जो छूरी (शस्त्र) थी, वह लोहे या इस्पात की बनी हुई नहीं थी । वह तो प्रेम और प्राणिमात्र के प्रति कल्याण से निर्मित दिव्य शब्दों की शक्ति थी ।

सबदै मारी सबदँ जिलाई ऐसा महंमद पीरं ।
ताकै भरमि न भूलौ काजी सो बल नहीं सरीरं ॥ १० ॥

हे काजी! इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब ने अपने शब्दों में शुद्ध अध्यात्म का प्रतिपादन किया । उनके आध्यात्मिक दिव्य सदुपदेशों से जीवात्मा की भौतिक और मायिक आसक्ति का नाश होता है तथा आत्मिक शक्ति प्राप्त होती है। सदुपदेश अथवा शब्द की ओट लेकर स्थूल बुद्धि से उनकी नकल करने से उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा । तुम्हारे शरीर में वह बल नहीं है, जिसे आध्यात्मिक बल कहा गया है और जो मुहम्मद साहब को सहज प्राप्त था ।

महायोगी गोरखनाथ की वन्दना

योगाचार्यवरं विशुद्धमनसं गोरक्षनाथं गुरुं
ज्ञानानन्दमहोदधिं सुविदितं पूर्णं दयासागरम् ।
भक्तानामभयप्रदं करुणया कैवल्यमोक्षप्रदं
वन्दे देवमनामयं रविनिभं मोहान्धकारापहम् ॥

जो योगाचार्यों में श्रेष्ठ हैं, विशुद्ध हृदय वाले हैं, ज्ञान और आनन्द के महासागर हैं, लोक में प्रसिद्ध हैं, पूर्ण हैं, दयानिधि हैं, करुणापूर्वक अपने आप ही कैवल्यमोक्ष प्रदान करने वाले हैं, भक्तों को अभय देते हैं, मैं उन सच्चिदानन्दस्वरूप निर्मल, स्वयं ज्योति गुरु गोरखनाथ की वन्दना करता हूँ।

[गोरक्षस्तुतिमञ्जरी]

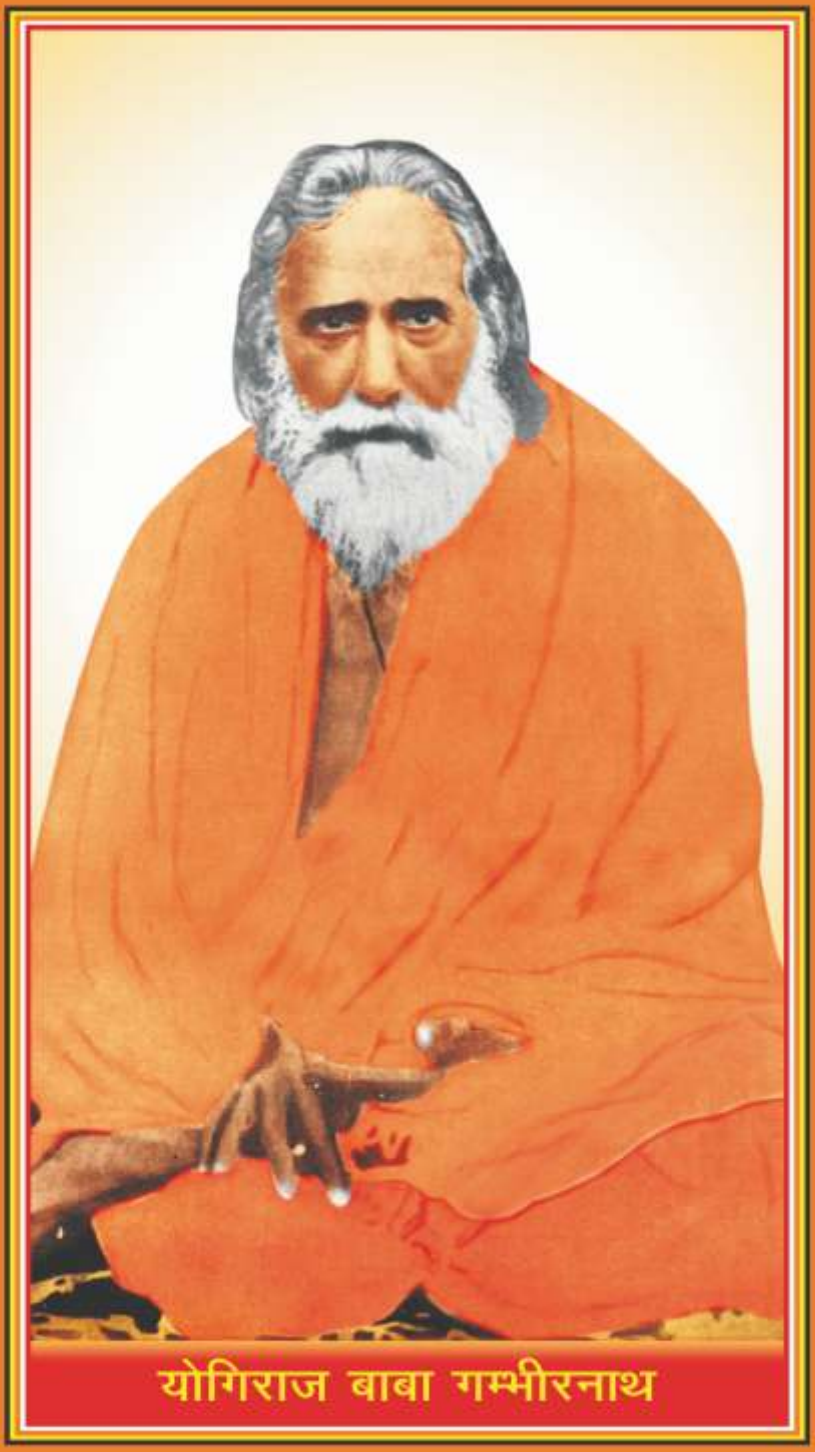

योगिराज बाबा गम्भीरनाथ

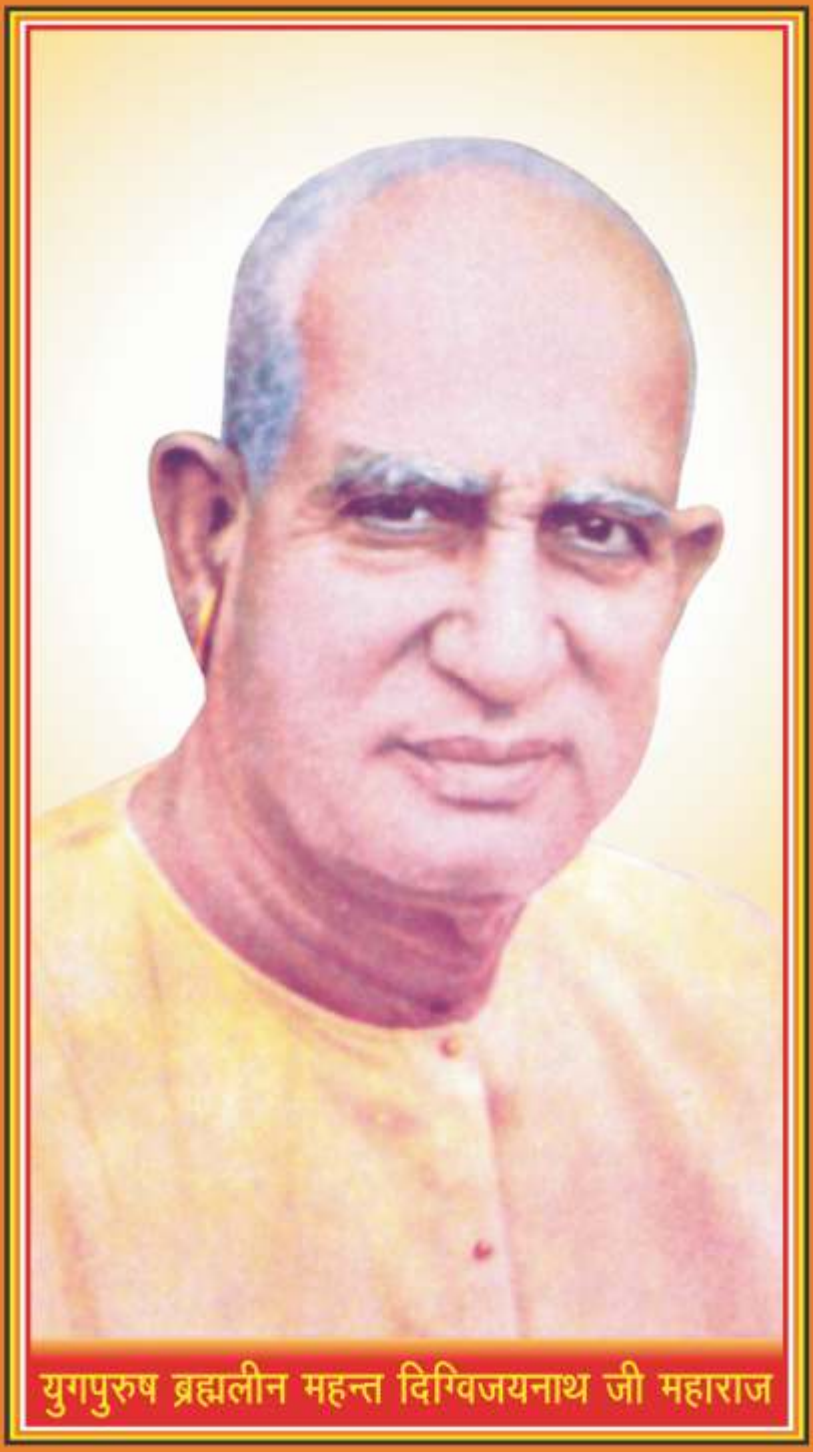

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज

योग-संदेश

***सम्पादक की लेखनी से**

भारत की सांस्कृतिक परंपरा में योग केवल व्यायाम नहीं, अपितु शरीर, मन तथा आत्मा के संतुलन का दिव्य ज्ञान माना गया है। प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनियों ने योग को मानव जीवन की सर्वोच्च साधना के रूप में स्वीकार किया है। योग बीज में महायोगी गोरखनाथ जी ने योग को परिभाषित करते हुए लिखा है-

योऽपानप्राणयोर्योगः स्वरजोरेतसोस्तथा ।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः ॥

अर्थात् जो प्राण और अपान का ऐक्य है, स्वकीय रज और वीर्य का योग है, सूर्य और चन्द्र का योग है, जीवात्मा और परमात्मा का योग है, इस प्रकार समस्त द्वन्दों के समूह का यह संयोग ही योग है।

इसके महत्त्व के विषय में कहा गया है कि-

योगात्सम्प्राप्यते ज्ञानं, योगो धर्मस्य लक्षणम्।

योगोः परन्तपो ज्ञेयस्तस्माद योगं समभ्यसेत्॥

योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है। योग ही धर्म का रूप है और योग ही परम तप माना जाता है। अतएव ऐसे योग का अभ्यास करना चाहिए। महर्षि पतञ्जलि ने योग को व्यवस्थित रूप प्रदान करते हुए योगसूत्र की रचना की तथा उन्होंने योग का उद्देश्य मन की चंचल वृत्तियों को नियंत्रित करना बताया है- **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।**

चित्त को वृत्तियों को रोकने का नाम योग है। पतञ्जलि के अष्टांग योग यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आज भी मानव जीवन को संतुलित एवं अनुशासित बनाने का श्रेष्ठ, मार्ग है। इसी प्रकार नाथ परंपरा के शिवावतार महायोगी गुरु गोरखनाथ ने योग को जनसाधारण तक पहुंचाया

तथा हठयोग के माध्यम से शरीर तथा प्राणशक्ति के शुद्धिकरण पर विशेष बल दिया। गुरु श्री गोरक्षनाथ की साधना केवल आध्यात्मिक उन्नति तक सीमित नहीं थी, अपितु सामाजिक जागरण एवं आत्मबल में समृद्धि का भी माध्यम थी। उन्होंने योग को जीवन की व्यावहारिक साधना के रूप में स्थापित किया। प्राचीन काल से अद्यतन गोरक्षपीठ के योग साधना केन्द्र द्वारा यौगिक क्रियाएं नित्य संचालित होती हैं। योग का उद्देश्य आत्मा एवं परमात्मा को प्राप्त करना है। क्योंकि सत्य, तप और आत्मज्ञान समस्त योग से ही सिद्ध होते हैं। योगशास्त्र में योग को साधने हेतु तीन साधन उल्लिखित हैं-

तपः स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि क्रियायोगः।''

तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान को क्रिया-योग कहते हैं।

आज के परिप्रेक्ष्य में मानव जीवन शैली में तनाव अनिद्रा, अवसाद रक्तचाप तथा अनेक शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं के उपचार के लिए योग सम्पूर्ण मानवता हेतु आशा का प्रकाश रूप प्रतीत हो रहा है। भारत के प्रयास से ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा २१ जून को विश्व योग दिवस के रूप में घोषणा भारत के लिए ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के लिए गौरव का विषय है। विश्व योग दिवस हमें अपनी प्राचीन आध्यात्मिक धरोहर को मनसा-वाचा-कर्मणा हृदयंगम करने हेतु निर्देशित करता है। गुरु गोरक्षनाथ की साधना प्रधान योग तथा महर्षि पतञ्जलि का दार्शनिक योग परंपरा आज भी मानवता को स्वस्थ, संतुलित एवं शांतिपूर्ण जीवन की दिशा प्रदान कर रही है। विश्व योग दिवस प्राचीन योग परम्परा की वैश्विक चेतना का प्रतिबिम्बन है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन में योग को अभिन्न अंग बनाना चाहिए क्योंकि- **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्** - अर्थात् शरीर ही सभी धर्मों का प्रथम साधन है।

■

नवनाथ कथा- मत्स्येन्द्रनाथ

नाथपंथ के संस्थापक आदिनाथ (शिव) माने जाते हैं, पर व्यक्ति रूप में इस परंपरा के प्रथम गुरु मत्स्येंद्रनाथ माने जाते हैं। मत्स्येंद्रनाथ के व्यक्तित्व को भी परवर्तीकाल में दिव्य और मानवी-दो दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया गया है। दिव्य रूप में उन्हें शिवावतार कहा गया है। उन्हें भगवती-पुत्र कहकर सिद्धनाथ की संज्ञा दी जाती है। कदलीमंजुनाथ माहात्म्य में कहा गया है कि अध्यात्मनिधि नामक ब्राह्मण दंपती की आराधना से प्रसन्न होकर मंजुनाथ ने स्वयं को शिशु रूप में कमलपुष्प पर अवतरित किया। 'योगिसंप्रदायाविष्कृति' ग्रंथ के अनुसार मत्स्येंद्रनाथ किसी भृगुवंशीय ब्राह्मण के घर जन्म लिए थे। गण्डांत योग में पड़ने के कारण पिता द्वारा समुद्र में प्रक्षिप्त कर दिए गए। जब ये पानी में प्रवाहित किए गए, तभी एक मछली इन्हें निगल गई। जिस समय महादेव पार्वती को उपदेश दे रहे थे, उस समय वहाँ मछली तैर रही थी। मत्स्योदर में विद्यमान रहकर इन्होंने उस उपदेश को सुना। जब मछली मारी गई तो उसके उदर से आप निकले, जिससे मत्स्येंद्रनाथ कहलाए। जी.एस. घुरे महोदय ने भी स्वीकार किया है कि मत्स्येंद्रनाथ नाम मत्स्य स्वामी होने के कारण पड़ा। व्यक्तिरूप में भी मत्स्येंद्रनाथ जी के जन्म व कर्म के संबंध में विविध मत प्रचलित हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास ने इन्हें असम निवासी मछुआ जाति का होना बताया है। कदली मंजुनाथ माहात्म्य के अनुसार, वे दक्षिण के 'तुलु' भाषी राज्य के राजा थे तथा मंगला नामक उनकी कोई राजनगरी थी । विद्वानों का मत है कि गोरक्षनाथ ने नेपाल में १२ वर्षों तक अनावृष्टि की स्थिति उत्पन्न करके वहाँ के लोगों को सद्मार्ग पर लाने का प्रयास किया। उस अकाल के दौरान मत्स्येंद्रनाथ को कपोतल पर्वत से बुलाकर नेपाल लाया गया था। इस पर्वत की स्थिति असम, दक्षिण भारत एवं सिंहल द्वीप में बताई जाती है। इस पर्वत की स्थिति में मतभेद परिलक्षित

*साभार - नाथपंथ, डॉ० प्रदीप कुमार राव, डॉ० पद्मजा सिंह

होता है। डॉ. मोहन सिंह का अनुमान है कि संगलद्वीप वर्तमान स्यालकोट में है। उसी स्थान से होकर मत्स्येंद्रनाथ नेपाल गए तथा शैव पाशुपत के वेश में उन्होंने शैवधर्म का प्रचार-प्रसार किया। नेपाल में इनको अवलोकितेश्वर के नाम से जाना जाता है।

डॉ. प्रबोधचंद्र ने मत्स्येंद्रनाथ की संस्कृत रचनाओं का संपादन 'कौलज्ञान निर्णय' नामक ग्रंथ के रूप में किया है। इसमें प्रयुक्त हस्तलेखों का समय भी १२वीं शताब्दी है। अब तक मत्स्येंद्रनाथ कृत 'योग विषय' सहित ६ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से ५ ग्रंथों को प्रामाणिक माना जाता है, जो निम्न हैं-

(१) कौलज्ञान निर्णय-मच्छंद्रनाथ, मीनपाद।

(२) अकुलवीरतंत्र- 'अ' मीनपाद

(३) अकुलवीरतंत्र- 'ब' मच्छिंदपाद

(४) कुलानंद-मत्स्येंद्र

(५) ज्ञानकारिका-मच्छिंद्रनाथपादस

मत्स्येन्द्र के कौलज्ञाननिर्णय में सृष्टि, प्रलय मानसलिंग का पूजन, निग्रह - अनुग्रह, जरा-मरण, अकुल से कुल की उत्पत्ति, चक्रध्यान, अद्वैतचर्या आदि अनेक विषयों पर विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है।

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानिमनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥
ताँ योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥

जब पंच ज्ञानेन्द्रियां मन सहित आत्मा में स्थिर होकर बैठती हैं, बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, तब उस अवस्था को 'परमागति' कहते हैं । उसी स्थिर इन्द्रिय धारणा को 'योग' कहते हैं। उस अवस्था में साधक प्रमाद रहित होता है।

हठयोग स्वरूप एवं साधना

योगी-सम्प्रदाय और उसका आदर्श

*योगी आदित्यनाथ

गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित योगी-सम्प्रदाय सामान्यतः 'नाथ-योगी', 'सिद्ध-योगी', 'दरसनी योगी' या 'कनफटा योगी' के नाम से प्रसिद्ध है। ये सभी नाम साभिप्राय हैं। योगी का लक्ष्य नाथ अर्थात् स्वामी होना है। प्रकृति के ऊपर पूर्ण स्वामित्व स्थापित करने के लिये योगी को अनिवार्यतः नैतिक, शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन की क्रमिक विधि का पालन करना पड़ता है । प्रकृति के ऊपर स्थापित स्वामित्व चेतना एवं पदार्थ दोनों दृष्टियों से होना चाहिये, अर्थात् उसे अपने विचारों, भावनाओं, इच्छाओं और क्रियाओं, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर तथा स्थान और समय, गरिमा और गुरुत्व, प्राकृतिक नियमों एवं भौतिक तत्त्वों आदि सभी पर नियंत्रण करना चहिये । उसे निश्चित रूप से सिद्धि या आत्मोपलब्धि करनी चाहिये और सभी आन्तरिक सुन्दरताओं का व्यावहारिक रूप से अनुभव करना चाहिए। उसे निश्चय ही सभी प्रकार के बन्धनों, दुखों और सीमाओं से ऊपर उठना चाहिये। उसे शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। उसे मृत्युञ्जयी होना चाहिये। उसे वास्तविक दृष्टि (दर्शन) अर्थात् परमतत्त्व की मूलभूत विशिष्टताओं को समझने के लिये अन्तर्दृष्टि की उपलब्धि होनी चाहिये । उसे अज्ञान के परदे को फाड़कर निरपेक्ष सत्य की अनुभूति करनी चाहिये और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिये । इस सम्प्रदाय के योगियों को विभिन्न संज्ञायें सम्भवतः इसलिये दी गई हैं कि जिस उच्चतम आध्यात्मिक आदर्श की अनुभूति के लिये उन्होंने योग-सम्प्रदाय में प्रवेश किया है, उसकी स्मृति अनंत रूप से बनी रहे । वे किसी भी निम्न कोटि की सिद्धि, गुह्यशक्ति या दृष्टि से ही सन्तुष्ट न हों,

*गोरक्षपीठाधीश्वर एवं मुख्यमन्त्री उत्तर प्रदेश

न उसे अपनी साधना का लक्ष्य बनावें । वे चमत्कारों की ओर प्रवृत्त न हों, क्योंकि सच्चे योगी के लिये ये सर्वथा तुच्छ हैं। अपनी साधना के बीच में इस प्रकार की जो शक्ति ये प्राप्त करते हैं, वह उच्च से उच्चतर स्थितियों की उपलब्धि में आध्यात्मिक पूर्णता की अनुभूति में, परमज्ञान और परममुक्ति, परमानन्द और परमशान्ति तथा मुक्ति या कैवल्य की अनुभति में प्रयुक्त होनी चाहिये। यह भौतिक शरीर भी आध्यात्मिक स्पर्श के द्वारा समय और स्थान की सीमाओं से परे दिव्य बना दिया जाता है, जिसे आध्यात्मिक शब्दावली में काया-सिद्धि कहते हैं।

जो योगी आत्मानुभूति की उच्चतम स्थिति तक पहुँच जाता है, सामान्यत: अवधूत कहलाता है। अवधूत से तात्पर्य उस व्यक्ति से है, जो प्रकृति के सभी विकारों का अतिक्रमण कर जाता है, जो प्रकृति की शक्तियों और नियमों से परे है, जिसका व्यक्तित्व मलिनताओं, सीमाओं, परिवर्तनों तथा इस भौतिक जगत् के दु:खों और बन्धनों के स्पर्श से परे हो जाता है। वह जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय और राष्ट्र के भेदों से ऊपर उठ जाता है। वह किसी भी प्रकार के भय, चाह या बन्धन के बिना पूर्ण आनन्द और स्वच्छन्दता की स्थिति में विचरण करता है। उसकी आत्मा परमात्मा या भगवान शिव, विश्व के स्रष्टा, शासक और हर्त्ता के साथ एकाकार हो जाती है। इस सम्प्रदाय की प्रामाणिक पुस्तकों में ऐसे अनेक योगियों का उल्लेख मिलता है, जिन्हें आध्यात्मिक साधना की यह भूमि प्राप्त हुई थीं, जिन्होंने इस जगत् के प्राणियों के सम्मुख मानव, अस्तित्व की दैवी सम्भावनाओं का प्रदर्शन किया था। इस प्रकार का अवधूत ही सच्चे अर्थो में नाथ, सिद्ध या दर्शनी है; जबकि अन्य योगी इस स्थिति की कामना करने वाले मात्र हैं।

■

महर्षि पतंजलि एवं नाथ सम्प्रदाय के योगी स्वात्माराम की दृष्टि में योग

*डॉ. अरविन्द कुमार तिवारी

योग शब्द भारतवर्ष की अमूल्य निधि है, जिसका उपदेश महर्षि पतंजलि ने वैदिक धारा के प्रवाहानुरूप किया है। यहाँ वैदिक धारा के प्रवाहानुरूप कहने से मेरा तात्पर्य है कि योग के जनक महर्षि पतंजलि नहीं है, अपितु प्रतिपादक हैं। योग विद्या हमारे वेदों की परम्परा से चली आ रही है। इसके अनेक प्रमाण हैं, किन्तु वाक्यशुद्धि के लिये इसका उपदेश महर्षि पतंजलि के द्वारा द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में किया गया है, ऐसा साक्ष्यों के द्वारा प्रमाणित होता है। योग का उल्लेख प्रायशः चारों वेदों में हुआ है। इनमें व्यवहृत योग शब्द का प्रयोग निश्चित रूप से योगसाधना का ही अर्थ देता है। यथा-

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपचितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति॥

इस प्रकार अनेकशः योग शब्द का उल्लेख वेदों में प्राप्त हुआ है, जो कहीं न कहीं से चित्त की एकाग्रता को सूचित करता है। इसी योग को महर्षि पतंजलि ने कहकर उपदेश दिया है। यथा-

अथ योगानुशासनम्।

जैसा कि हम सुनते आ रहे हैं कि 'योगेन चित्तस्य' इति अर्थात् योग चित्त के मालिन्य को दूर कर समाधि के मार्ग पर ले जाता है। महर्षि ने शारीरिक मालिन्य को दूर करने के लिये चरकसंहिता का उपदेश दिया है और शब्द के मालिन्य को दूर करने के लिये व्याकरण महाभाष्य का उपदेश दिया है। यथा -

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपकारोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

इसके अतिरिक्त 11वीं शताब्दी के धारेश्वर भोजदेवविरचित राजमार्तण्डवृत्ति में भी इस कथ्य की पुष्टि होती है। यथा-

*संस्कृत प्रवक्ता, आदर्श वैदिक विद्यालय इ० का० सिनौली, बागपत

शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाङ्कसञ्ज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके।
वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृता भर्त्रैव येनोद्धृतः
तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः॥

इसी प्रकार 11 शताब्दी में चरकसंहिता के टीकाकार चक्रपाणिदत्त कहते हैं कि-

पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हन्त्रेऽहिपतये नमः॥

भद्रजन! यहाँ इन उद्धरणों द्वारा यह सूचना मात्र दी गयी है कि महर्षि पतंजलि ने मनोमालिन्य को दूर करने के लिये योग का उपदेश किया है। शारीरिक मल अर्थात् रोग को दूर करने के लिये चरकसंहिता का उपदेश सर्वविदित है। यह सुस्पष्ट होने पर भी नाथसम्प्रदाय के महायोगी स्वात्माराम जी ने हठयोगप्रदीपिका नामक ग्रन्थ में रोग को योग से दूर करने की घोषणा कर दी है। योग के क्षेत्र में यह नाथसम्प्रदाय के योगियों की बहुत बड़ी देन है, जिसे कृतज्ञ समाज सादर स्वीकार करता है।

हठयोगप्रदीपिका प्रायः 14-15वीं शताब्दी के आसपास की रचना है, क्योंकि इस समय हठयोग और राजयोग के विषय में भ्रान्ति फैलाने वालों की भीड़ खड़ी हो गयी थी, जिसे दूर करना अत्यावश्यक प्रतीत होने लगा था। इसी दूरी को समाप्त करने के उद्देश्य से योगी स्वात्माराम जी ने हठयोगप्रदीपिका की रचना करते हुये लिखा है कि-

हठयोग और राजयोग दो पृथक् पृथक् मार्ग नहीं हैं। दोनों की चरम परिणति राजयोग अर्थात् समाधि में होती है। जिस प्रकार राजयोग अपने आप में मात्र साधन ही नहीं है अपितु साध्य भी है, उसी प्रकार हठयोग अपने-आप में पूर्ण लक्ष्य नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि हठयोग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना हठयोग अपूर्ण है। यथा-

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः।
न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत्॥

स्वात्माराम योगी के मतानुसार हठयोग परम्परा के आदि आचार्य श्री आदिनाथ हैं, जिन्हें भगवान् शिव माना जाता है। नाथ सम्प्रदाय के आदिप्रवर्तक श्रीगोरक्षनाथ योगी ने भी श्रीआदिनाथ को आदि आचार्य स्वीकार किया है।

गुरु श्रीगोरक्षनाथ यद्यपि नाथसम्प्रदाय के प्रवर्तक थे, किन्तु हठयोगप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी ने मत्स्येन्द्रनाथ और श्रीगोरक्षनाथ को बड़े आदर के साथ याद किया है-

श्रीआदिनाथमत्स्येन्द्रशाबरानन्दभैरवाः।
चौरंगीमीनगोरक्षविरूपाक्षविलेशयाः।।
मन्थानो भैरवो योगी सिद्धिर्बुद्धश्च कन्थडिः।
कोरण्टकः सुरानन्दः सिद्धिपादश्च चर्पटिः।।
कानेरी पूज्यपादश्च नित्यनाथो निरंजनः।
कपाली बिन्दुनाथश्च काकचण्डीश्वरादयः।।
अल्लामः प्रभुदेवश्च घोडाचोली च टिण्टिणिः।
भानुकी नारदेवश्च खण्डः कापालिकस्तथा।।
इत्यादयो महासिद्धा हठयोगप्रभावतः।
खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते।।

यहाँ जिन 33 महायोगियों का नामोल्लेख हुआ है, वे सब नाथ पन्थ के हैं। इस प्रकार योग के क्षेत्र में प्रायोगिकरूप से यदि देखा जाय तो नाथपन्थ का योगदान अविस्मरणीय ही नहीं अनुकरणीय भी है। महर्षि पतंजलि का 'योग' रोग दूर करने का मार्ग नहीं बतलाता है, अपितु चित्त की शुद्धि का उपदेश मात्र देता है। यद्यपि व्याधि की चर्चा योगसूत्रों में प्राप्त होती है। यथा-

व्याधिस्तान्यसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्त्वानि चित्तविक्षेपास्ते अन्यतरायाः।

अर्थात् व्याधि, स्तान्य, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व - ये चित्त के नव विक्षेप अर्थात् विघ्न हैं। व्यासभाष्य में व्याधि को स्पष्टतः वात, पित्त, कफ धातु, भोजन पानादि रस और

इन्द्रियों में न्यूनाधिक्य का होना बताया गया है। यथा-

तत्र व्याधिर्धातुरसकरणवैषम्यनिमित्तम्।

इसके पश्चात् इन विघ्नों के सहयोगियों की चर्चा के प्रसंग में दु:ख शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा-

दु:खदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुव:।

यहाँ दु:खत्रय को स्वीकार किया गया है और येनाभिहता: प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद् दु:खम्। यह इसी सूत्र के व्यासभाष्य में कहा गया है। मेरा मानना है कि योगदर्शन के 195 सूत्रों में क्वचिदपि यह नहीं कहा गया है कि योग से रोग अर्थात् व्याधि को दूर किया जाता है। परन्तु यह कार्य यदि किसी सम्प्रदाय या पन्थ ने किया है तो यह नाथपन्थ ही है, जिसने योग के अंग आसन से रोगों को दूर करने का मार्ग प्रशस्त कर पातंजल योगदर्शन को बहुत पीछे छोड़ दिया है। एक ओर जहाँ महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों को मान्यता दी है तो दूसरी ओर योगीश्वर स्वात्माराम ने जो नाथपन्थ के आचार्य हैं, उन्होंने योग के चार अंगों (आसन, कुम्भक, मुद्रा, और नादानुसन्धान) को मान्यता देकर सैद्धान्तिक योग की परुष योगभूमि को कोमलता प्रदान की है। ये कहते हैं-

हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्॥

इसी श्लोक में स्वात्माराम योगी ने यह बीजारोपण कर दिया है कि योग का महत्त्वपूर्ण अंग आसन है। मानसिक तथा शारीरिक स्थिरता को आसन कहते हैं, यह आरोग्य एवं शरीरलाघव प्रदान करता है। अर्थात् आसन करने से आरोग्य तथा शारीरिक हल्कापन आता है।

उपर्युक्त श्लोक से पहले दो श्लोक द्रष्टव्य हैं, जिनमें महर्षि पतंजलि के यम, नियम का अन्तर्भाव सा दृष्टिगोचर होता है। यथा-

अत्याहार: प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रह:।
जनसङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति॥

अर्थात् अत्याहार, अधिक श्रम, अधिक बोलना, नियम पालन में आग्रह, जनसंग, चंचलता, ये छह योग को विनष्ट करते हैं। और

उत्साहात् साहसाद् धैर्यात्तत्त्वज्ञानाच्च निश्चयात्।
जनसङ्गपरित्यागात् षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्यति॥

उत्साह, साहस, धैर्य, यथार्थज्ञान, संकल्प, तथा लोकसंग का परित्याग इन छह से योग की सिद्धि होती है।

आसन रोगों को दूर करता है, यह मन्तव्य स्वात्माराम योगी का है, किन्तु यह अकस्मात् या हठात् है ऐसा कदापि नहीं मानना चाहिये, क्योंकि योगचूड़ामण्युपनिषद् में आसन से रोगों को दूर करने की बात कही गयी है। यथा

आसनेन रुजं हन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति॥

परन्तु इस तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि योगसूत्रों के प्रतिपादक महर्षि पतंजलि ने आसनसिद्धि के पश्चात् सुख-दुःखादिद्वन्द्वों का अभिघात होना बताया है। यथा-

ततो द्वन्द्वानभिघातः।

ततः अर्थात् आसनजयात्। व्यासभाष्यकार लिखते हैं कि साधक आसनजय के कारण शीतोष्णादि द्वन्द्वों से पीड़ित नहीं होता। यथा-

शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते।

मेरे शोधपत्र का विवेच्य विषय-बिन्दु यही है। यह बात समझ में नहीं आती कि कालान्तर में यह आसन रोगों को दूर करने वाला कैसे बन गया? अस्तु यह योगियों का विषय है। एक बात यह भी विचारणीय है कि अधिकांश आसन पशुओं के बैठने की स्थिति पर आधारित हैं। तो क्या यह मान लिया जाय कि जिन पशु-पक्षियों के बैठने की स्थिति रोगों को दूर कर देती है, वे पशु-पक्षी सदैव रोगमुक्त रहते हैं? अस्तु यह भी अनुसन्धान का विषय है। स्वात्माराम योगीश्वर ने

अनेक आसनों के लाभ के प्रसंग में आसन द्वारा रोग का नाश होना बताया है। यथा–

मत्स्येन्द्रपीठं जठरप्रदीप्तं प्रचण्डरुग्मण्डलखण्डनास्त्रम्।
अभ्यासतः कुण्डलिनीप्रबोधं चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम्॥

यहाँ मत्स्येन्द्रासन के अभ्यास करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यह रोगों को नष्ट करने में अस्त्र के समान है, इससे कुण्डलिनी जागृत होती है तथा चण्द्रमण्डल स्थिर होता है। पश्चिमोत्तासन के सन्दर्भ में भी आरोग्यलाभ की चर्चा है।

मयूरासन का लक्षण प्रस्तुत करने के बाद स्वात्माराम योगीश्वर ने अतीव सुन्दर श्लोक लिखा है, जिसमें रोगों के दूरीकरण की बात प्रगल्भता के साथ की गयी है। यथा–

हरति सकलरोगान् आशु गुल्मोदरादीन्
अभिभवति च दोषानासनं श्रीमयूरम्।
बहु कदशनभुक्तं भस्मकुर्यादशेषं
जनयति जठराग्निं जारयेत् कालकूटम्॥

इसका आशय है कि मयूरासन शीघ्र ही समस्त रोगों का नाश करता है तथा उदरगुल्म आदि दोषों को दूर करता है, अधिक तथा कुपथ्य भोजन को भी अच्छी तरह पचाता है तथा जठराग्नि को इतना प्रदीप्त करता है मानो विष भी भस्म हो जाय। पद्मासन को सभी व्याधियों का नाशक स्वात्माराम योगी ने बताया है। यथा–

इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम्।
दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते भुवि॥

इसी प्रकार प्राणायाम को भी रोगों का अपसारक बताया गया है। यथा–

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अप्रयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥

स्वात्माराम योगी ने यह स्पष्ट संकेत किया है कि पवन के प्रकोप से हिचकी, श्वास, खांसी, सिरोवेदना, नाकरोग, कर्णरोग आदि अनेक रोग होते हैं। यथा–

हिक्का श्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः।
भवन्ति विविधा रोगाः पवनस्य प्रकोपतः॥

प्राणायाम के अन्तर्गत षट्कर्म में परिगणित धौतिक्रिया फलस्वरूप खाँसी, दमा, तिल्ली, कुष्ठ तथा अन्य बीस प्रकार के कफ सम्बन्धी रोग निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं। यथा–

कासश्वासप्लहीहकुष्टं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेन प्रयान्त्येव न संशयः॥

बस्तिकर्मके अभ्यास से गुल्म, प्लीह, जलोदर, वात–पित्त–कफ से उत्पन्न सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। यथा–

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।
बस्तिकर्मप्रभावेण क्षीयन्ते सकलामयाः॥

नेति के अभ्यास से रोगों के समूह को नष्ट किया जाता है। यथा–

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतराशु निहन्ति च॥

त्राटक नेत्ररोगों को दूर करता है। यथा–

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम्॥

आजकल अनेक योगगुरुओं ने प्राणायाम के एक विशेष प्रभाग कपालभाति को, जो अत्यन्त सुगम है जनसामान्य तक पहुंचाकर महान् उपकार किया है। यह कपालभाति कफदोष का नाश करती है ऐसा योगीश्वर स्वात्माराम जी कहते हैं। यथा–

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससम्भ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषिणी॥

जालन्धरबन्ध की अवस्था में जब साधक कुम्भक करता है, तब वह कण्ठ से नीचे उतरती हुई जैसी अनुभव करता है। इस सन्दर्भ में यह प्राण कहा गया है तथा मूलबन्ध के द्वारा जो ऊपर जाता हुआ जैसा अनुभव किया जाता है वह अपान कहा गया है। इस अपान वायु को ऊपर उठाकर प्राण वायु को कण्ठ से नीचे ले जाना चाहिये। इससे योगसाधक बुढ़ापा से मुक्त होकर सोलह वर्ष के युवक के समान हो जाता है। यथा–

अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य प्राणं कण्ठादधो नयेत्।
योगी जराविमुक्तः सन् षोडशाब्दवया भवेत्॥

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम की सिद्धि हो जाने के पश्चात् विवेकज्ञान के प्रकाश पर पड़े आवरण के क्षीण होने की बात कही है। यथा–

ततः क्षीयते प्रकाशावरणक्षयः॥

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम का एक और फल बताते हुये लिखा है कि प्राणायाम की सिद्धि होने पर धारणाओं में मन की क्षमता होती है। यथा–

धारणासु च योग्यता मनसः॥

योग के क्षेत्र में अद्भुत उपदेश देने वाले योगी स्वात्माराम जी ने हठयोगप्रदीपिका में योग के तृतीय अंग मुद्रा का कथन किया है। विभिन्न प्रकार की मुद्राओं के लाभ को बताकर योगगुरु ने जनसामान्य को आकृष्ट किया है। महामुद्रा के प्रसंग में ये कहते हैं कि जो महामुद्रा का अभ्यास करता है, उसके क्षय अर्थात् तपेदिक, चर्मरोग, कोष्ठबद्धता, वायुगोल, अजीर्ण आदि अनेक रोग दूर हो जाते हैं। यथा–

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।
तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्॥

जीभ को उल्टा करके कपालकुहर के अन्दर लगाने की मुद्रा खेचरी मुद्रा कहलाती है। इससे रोगों को दूर करने का उपदेश दर्शनीय है। यथा–

कलां पराङ्मुखीं कृत्वा त्रिपथे परियोजयेत्।
सा भवेत् खेचरी मुद्रा व्योमचक्रं तदुच्यते॥
रसामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणाद्र्धमपि तिष्ठति।
विषैर्विमुच्यते योगी व्याधिजन्मजरादिभिः॥

और भी

पीड्यते न स रोगेण लिप्यते न च कर्मणा।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योगशास्त्र के विचारों का उपबृंहण संक्षेप में करते हुये स्वात्माराज योगी ने नवीन विचारधारा को प्रवाहित कर विस्मित कर दिया है। यह नाथपन्थ के योगियों की देन ही है जिससे सम्पूर्ण संसार आज 21 जून को विश्वयोगदिवस मना रहा है। शास्त्रों के मतों में वैभिन्य का होना विरोध नहीं अपितु समन्वय की दृष्टि का सूत्रपात है। जो मत आरम्भ में सूत्रवत् योगियों द्वारा प्रतिपादित हुआ, वह कालान्तर में जनसामान्य की अपेक्षाओं और आवश्कताओं के अनुरूप नवीन रूप धारण करता गया, जिसका परिणाम आज सम्पूर्ण विश्व योगदिवस के रूप में देख रहा है। आसन प्राणायाम से रोगोपचार की उद्भावना नाथपन्थ का वैश्विक प्रदेय है, जिससे कोई असहमत नहीं हो सकता। अतः नाथपन्थ की इस महनीय परम्परा के प्रति आभार प्रकट करता हुआ मैं अपने विचारों को पूर्ण करता हूँ।

हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः ।
तयोर्विनष्टे एकस्मिंस्तद्द्वावपि विनश्यतः ॥

चित्त के दो हेतु हैं -वासना और प्राण। इनमें से किसी एक पर नियन्त्रण होने से दोनों नियन्त्रित हो जाते हैं।

■

भरशिव-नाग परंपरा' का गोरखपुर मण्डल के सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में योगदान

*आशीष कुमार

भारतीय इतिहास में कुषाण साम्राज्य के पतन और गुप्त साम्राज्य के उदय के मध्य का कालखंड (१५० ई. ३५० ई.) राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत निर्णायक रहा है। इस **'अंधकार युग'** की समाप्ति और एक नवीन सांस्कृतिक पुनर्जागरण का श्रेय **'भरशिव-नाग'** वंश को दिया जाता है।' भरशिव-नाग परंपरा ने केवल मध्यदेश को विदेशी आधिपत्य से मुक्त नहीं कराया, बल्कि उत्तर भारत में एक सुदृढ़ शासन व्यवस्था, वैदिक कर्मकांडों की पुनर्प्रतिष्ठा और शैव धर्म के प्रसार की नींव भी रखी। पूर्वी उत्तर प्रदेश, विशेष रूप से वर्तमान गोरखपुर मण्डल (जिसमें गोरखपुर, देवरिया, कुशीनगर और महराजगंज जनपद शामिल हैं), इस नाग-शैव चेतना के प्रभाव क्षेत्र का एक प्रमुख केंद्र रहा। यह शोध आलेख गोरखपुर मण्डल के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विकास में भरशिव-नाग परंपरा और उनसे जुड़ी 'भर' जातियों के बहुआयामी योगदान का अकादमिक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और नाग-भरशिव सत्ता

इतिहासकार डॉ. के.पी. जायसवाल के अनुसार, कुषाणों की निर्मम सत्ता को उखाड़ फेंकने का ऐतिहासिक कार्य भरशिव नागों ने किया। इन शासकों को 'भरशिव' इसलिए कहा गया क्योंकि उन्होंने शिव के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हुए शिवलिंग को अपने कंधों पर धारण किया था ('भारं शिवस्य वहन्ति इति भारशिवाः')। वाकाटक और गुप्त अभिलेख इस बात की पुष्टि करते हैं कि भरशिवों ने काशी में गंगा जल से अपना राज्याभिषेक किया और अपनी विजय के उपलक्ष्य में दस अश्वमेध यज्ञ संपन्न किए। इस घटना ने उत्तर भारत की संपूर्ण राजनीतिक और सांस्कृतिक धुरी को बदल दिया।

गोरखपुर मण्डल का भौगोलिक क्षेत्र, जो प्राचीन मल्ल और कोसल जनपदों का हिस्सा था, इस नवीन शैव-नाग उभार से सीधे तौर पर प्रभावित हुआ। एच. आर. नेविल द्वारा रचित 'गोरखपुर गजेटियर' (१९०९) इस क्षेत्र के प्रारंभिक इतिहास पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट करता है कि राजपूतों और मुगलों के आगमन से बहुत पहले, गोरखपुर और समीपवर्ती तराई क्षेत्रों पर 'भर' (अथवा राजभर) जातियों

*शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

का एकछत्र राज था। ब्रिटिश इतिहासकारों और पुरातत्त्वविदों ने इन 'भर' शासकों को प्राचीन भरशिव-नाग परंपरा की ही एक ऐतिहासिक और सामाजिक कड़ी माना है, जिन्होंने कुषाणों के बाद विकेंद्रीकृत गणराज्यों के रूप में पूर्वी उत्तर प्रदेश में अपना आधिपत्य स्थापित किया।

धार्मिक क्षेत्र में योगदान

भरशिव-नागों का सर्वप्रमुख योगदान वैदिक-शैव धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा था, जिसका व्यापक प्रभाव गोरखपुर मण्डल के जनमानस पर पड़ा।

१. शैव धर्म और स्थानीय उपासना का एकीकरण: कुषाण काल में बौद्ध धर्म के बढ़ते प्रभाव के मध्य, भरशिवों ने विशुद्ध वैदिक और शैव परंपरा को पुनर्जीवित किया। उन्होंने बड़े और खर्चीले मंदिरों के स्थान पर ग्राम-स्तर पर शिवलिंगों की स्थापना को प्रोत्साहित किया। 'गोरखपुर मण्डल के ग्रामीण अंचलों में आज भी शिव पूजा और नाग पूजा (नाग पंचमी) का जो गहरा समन्वय दिखाई देता है, वह इसी भरशिव काल की देन है। नाग-देवताओं को रक्षक के रूप में पूजने की लोक-परंपरा सीधे नागवंशीय आख्यानों से जुड़ती है।'

२. तीर्थों और कर्मकांडों का पुनरुद्धार: काशी में दस अश्वमेध यज्ञ करने का प्रभाव समीपवर्ती पूर्वी क्षेत्रों पर भी पड़ा। राप्ती, रोहिणी और गंडक नदियों के तटीय क्षेत्रों में वैदिक यज्ञीय कर्मकांडों को पुन: आश्रय मिला। 'उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स: देवरिया' (१९८८) में उल्लिखित पुरातात्त्विक सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि देवरिया और कुशीनगर के समीपवर्ती टीलों से प्राप्त मृण्मूर्तियां (जमततंबवजजं) और शिव-प्रतीक इस बात की गवाही देते हैं कि उत्तर-कुषाण और पूर्व-गुप्त काल के मध्य इस क्षेत्र में शिव और शक्ति की उपासना अपने चरम पर थी।

३. गोरक्षनाथ पीठ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: आज गोरखपुर मण्डल अपनी विशिष्ट 'नाथ संप्रदाय' और गोरक्षपीठ के लिए विश्वविख्यात है। यद्यपि नाथ संप्रदाय का उदय बाद की शताब्दियों में हुआ, किंतु शिव-उपासना, हठयोग और तंत्र के लिए जो सामाजिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि आवश्यक थी, उसका निर्माण भरशिव-नागों की शैव चेतना द्वारा ही किया गया था।' उन्होंने जिस तपस्वी और आक्रामक शैव धर्म को जन-जन तक पहुँचाया, कालांतर में उसी उर्वर भूमि पर नाथ संप्रदाय पल्लवित हुआ।

सांस्कृतिक एवं सामाजिक अवदान

भरशिव-नागों ने समाज को एक नई सांस्कृतिक पहचान और

कृषि-आधारित स्थिरता प्रदान की।

१. जनजातीय और वनवासी जातियों का एकीकरण: भरशिव परंपरा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह किसी एक संभ्रांत वर्ग तक सीमित नहीं थी। इसमें स्थानीय कृषक, योद्धा और वनवासी जातियों का अभूतपूर्व समावेश था। डॉ. राजबली पाण्डेय ने अपने शोध में स्पष्ट किया है कि गोरखपुर क्षेत्र में निवास करने वाली पासी, भर, राजभर और चेरू जैसी स्थानीय जातियां स्वयं को इसी प्राचीन नाग-परंपरा से संबद्ध मानती हैं। भरशिवों ने इन शूरवीर जनजातियों को मुख्यधारा के शैव समाज के साथ एकीकृत कर एक समरस समाज की स्थापना की।'

२. कृषि विकास और जल प्रबंधन: नेविल का गजेटियर स्पष्ट करता है कि गोरखपुर मण्डल में जंगलों की कटाई कर नई बस्तियां बसाने और कृषि भूमि के विस्तार का श्रेय 'भर' शासकों को ही जाता है।' उन्होंने सिंचाई और जल संचयन के लिए सैकड़ों विशाल पोखरों, कुओं और तालाबों का निर्माण करवाया। गोरखपुर के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी ऐसे अनेक प्राचीन तालाब विद्यमान हैं, जिन्हें लोक-स्मृति में 'भरों द्वारा निर्मित' माना जाता है।

३. स्थापत्य एवं दुर्ग निर्माण: गोरखपुर मण्डल प्राचीन काल से ही पक्की ईंटों के निर्माण के लिए जाना जाता है। डोमिनगढ़ (गोरखपुर) और देवरिया के अनेक प्राचीन टीलों की खुदाई में ईंटों के विशाल खंडहर प्राप्त हुए हैं। नेविल के अनुसार, संपूर्ण राप्ती और गंडक बेसिन में भर राजाओं द्वारा निर्मित ईंटों के दुर्गों (थ्वतजे) का जाल बिछा हुआ था।' यद्यपि समय के साथ वे नष्ट हो गए, किंतु उनकी निर्माण शैली और नगर-नियोजन की तकनीकी ने गुप्तकालीन स्थापत्य कला के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया।

निष्कर्षत:, १५० ई. से ३५० ई. के मध्य विकसित हुई 'भरशिव-नाग परंपरा' मात्र एक राजनीतिक सत्तांतरण नहीं था, बल्कि यह एक सशक्त सांस्कृतिक और धार्मिक पुनर्जागरण था। इस परंपरा ने गोरखपुर मण्डल को कुषाणों के सांस्कृतिक क्षरण से निकालकर एक सुदृढ़ शैव और कृषि-प्रधान समाज की ओर अग्रसर किया। गोरखपुर गजेटियर और देवरिया गजेटियर के अकादमिक साक्ष्य इस बात की अकाट्य पुष्टि करते हैं कि भरशिव-नाग परंपरा से जुड़ी जातियों ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के स्थापत्य, जल-प्रबंधन और लोक-संस्कृति के विकास में अद्वितीय योगदान दिया। आज गोरखपुर की जो विशिष्ट शैव-नाथ लोक-पहचान परिलक्षित होती है, उसकी गहरी जड़ें इसी गौरवशाली भरशिव-नाग युग में निहित हैं। ■

धर्म,संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान मासिक पत्रिका

योगवाणी

लेख आमंत्रण

प्रेषक.

डॉ. राकेश कुमार तिवारी
प्रभारी, प्रकाशन
श्री गोरखनाथ मंदिर,गोरखपुर

सेवा में.
समादरणीय विद्वज्जन,

श्री गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर द्वारा धर्म, संस्कृति, अध्यात्म, नाथ पंथ एवं योग आदि विविध विषयों पर आधारित **"योगवाणी"** मासिक पत्रिका सन् १९७६ से निरंतर प्रकाशित होती रही है। योगवाणी मासिक पत्रिका भारतीय सनातन परंपरा, योग साधना, आध्यात्मिक चिंतन, जीवनोपयोगी ज्ञान तथा सांस्कृतिक मूल्यों के प्रचार प्रसार के माध्यम से समाज में सकारात्मक एवं प्रेरणादायक विचारों के संवर्धन हेतु प्रतिबद्ध है।

पत्रिका के गुणवत्तापूर्ण एवं निरंतर प्रकाशन हेतु धर्म, संस्कृति, नाथ पंथ , योग, वेद, वेदांग, दर्शन, अध्यात्म, आयुर्वेद, विशेष पर्व, सन्त-महापुरुष जीवनी, पौराणिक आख्यान आदि पर आधारित आप महानुभाव का मौलिक, वैचारिक, शोध परक एवं बौद्धिक लेख (अधिकतम ८०० से १००० शब्दों में) सादर आमंत्रित है। आपके महत्त्वपूर्ण लेख द्वारा पत्रिका के उन्नयन के साथ ही संपादक मंडल का उत्साहवर्धन होगा ।

सधन्यवाद

लेख प्रेषण हेतु संपर्क

ईमेलः yogvanigmndr@gmail.com
निम्नांकित नंबरों पर व्हाट्सएप के माध्यम से भी
लेख प्रेषण किया जा सकता है-

संपर्क सूत्रः

8858861353, 9935510927, 9452569717

मानवजीवन का लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के उपाय

***डॉ.राकेश कुमार मिश्र**

मनुष्य का जीवन अनेक जन्मों के संचित पुण्य से प्राप्त होता है।मनुष्य धरती का एक मात्र ऐसा प्राणी है,जो जन्म-जन्मान्तर के कर्मो के फलों को भोगता है तथा अपने स्वयं के उत्तम कर्मों से पूर्व के संचित पाप का नाश भी कर सकता है। मनुष्य तथा पशु में आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन आदि गुण समानरूप से पाये जाते हैं, परन्तु मनुष्य के पास ईश्वर प्रदत्त धर्म (एक पारिभाषिक शब्द जिसके अनेक अर्थ होते हैं, जैसे कर्म आदि) नामक तत्त्व उसे संसार के सभी प्राणियों से अलग तथा उत्तम बनाता हैं। मनुष्य की बुद्धि भी अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट होती है। इसी कारण मनुष्य चिंतनशील होता है। सृष्टि के आरम्भ में हमारे देश के ऋषि-मुनियों के द्वारा मानवजीवन के लक्ष्य के ऊपर शोध किया गया। उन्होने निष्कर्ष रूप से हमे बताया कि मनुष्य को पुरुषार्थ करना होगा। धर्म,अर्थ,काम, तथा मोक्ष ये चार पुरुषार्थ स्वीकार किये गये हैं।इनमे चतुर्थ अर्थात् मोक्ष ही मानव जीवन का परम लक्ष्य स्वीकार किया गया है। मोक्ष शब्द का अर्थ होता है मुक्ति। यहाँ प्रश्न उठता है कि किससे मुक्ति? इसका उत्तर है जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति। बच्चे के जन्म के समय माँ के दर्द को तो लोग समझ सकते हैं, परन्तु बच्चे के जन्म के समय की पीड़ा और उसके पूर्व माँ के गर्भ रूपी अन्धेरे कोठरी की पीड़ा की कल्पना करना भी आसान नहीं है। मृत्यु के समय भी असहनीय पीड़ा को प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः इसी मृत्युलोक में आकर प्राणी नाना प्रकार के दुखों को भोगता है। मनुष्य सकाम आध्यात्मिक व धार्मिक कार्यों के संपादन से स्वर्ग तक को प्राप्त सकता है, परन्तु वहाँ पर (स्वर्ग में) भी तब तक ही रहने का अवसर मिलता है जब तक कि हमारे संचित पुण्य हैं। उसके बाद फिर मृत्युलोक में आना पडता है। स्वर्ग में इन्द्र तक भी स्थायी नहीं हैं। हमारी प्राच्यविद्या में अनेक उद्धरण ऐसे मिलते हैं, जिसमे उद्धृत किया गया है कि जिस मनुष्य के १०० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हो जायेंगे वह स्वर्ग का

*सहायक आचार्य, सरकारी महिला महाविद्यालय
पुरी,ओडिशा

राजा बन जायेगा। इसलिए कठोपनिषद् में नचिकेता यमराज के अनेक प्रलोभन के बावजूद भी स्वर्गप्राप्ति की अपेक्षा आत्मतत्त्व की प्राप्ति के सन्दर्भ में इच्छा प्रकट करता है। जिस प्रकार हम जब मोबाईल रीचार्ज कराते हैं तो उसमें एक समय-सीमा दी जाती है कि हम उसी समय सीमा तक उसकी सेवाओं का आनन्द उठा सकते हैं। उसके बाद आउट गोइङ्ग और इनकमिङ्ग बन्द हो जाता है, उसी प्रकार स्वर्ग में संचित पुण्य पर्यन्त रहने का अवसर मिलता है, बाद में फिर मृत्युलोक में ही आना पडता है। इसीलिए मुक्ति का स्थायी समाधान क्या है? इस दिशा में वैदिक वाङ्मय में प्रथम चिन्तन प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए ब्रह्मज्ञान (आत्मतत्त्व) का ज्ञान परमावश्यक माना गया है। मनुष्य जब धरती पर आता है तो उसके सामने दो रास्ते होते हैं- प्रेय मार्ग तथा श्रेयमार्ग। प्रेयमार्ग प्रीतिकर होता है। सांसारिक भोगों सुखों को भोगने के अनेक संसाधन उपलब्ध होते है। जो व्यक्ति इस मार्ग का पथिक बनता है, वह- जीवन मरण के चक्रव्यूह का चक्कर लगाता रहता है। वहीं जो व्यक्ति श्रेयमार्ग का चयन करता है उसके जीवन में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य आती हैं, परन्तु वह अपने परम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। जैसे किसी मेले में पिता के साथ पुत्र जाता है, वहाँ वे इतने खिलौने देखकर अपने पिता के हाथ को छुड़ाकर उनके साथ खेलने में अपने पिता को ही भूल जाता है, ठीक इसी प्रकार जब हमें ईश्वर यहाँ घुमाने लाता है तो हम अनित्य भोग- विलास की सामग्रियों को पाकर उसे ही भूल जाते हैं। गीता में मुक्ति के तीन योग बताएं गये हैं-

१. कर्मयोग २, ज्ञानयोग तथा ३.भक्तियोग

जैसे गोरखपुर में किसी को दिल्ली जाना हो तो उनके पास तीन रास्ते हैं। वह यदि संपन्न है तो हवाई जहाज से जा सकता है। मध्यम श्रेणी का है तो रेलयान से जा सकता है। यदि वाहन से जाना चाहाता है तो उनके लिए भी रास्ता उपलब्ध है। उपनिषद् तथा वैदिकदर्शन में इस विषय पर बहुत विस्तार से वर्णन उपलब्ध होता है। ■

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज

श्रीरामचरितमानस में वट वृक्ष की बहुलता

*रामजन्म सिंह

अपने प्रबन्ध काव्य श्रीरामचरितमानस में महाकवि तुलसीदास ने पीपल, आम, पाकड़, बरगद, अशोक आदि अनेक वृक्षों के महत्त्व तथा उनकी उपयोगिता को बिना पर्यावरण शब्द का संदर्भ दिए प्रतिपादित किया है। इनमें भी बरगद के वृक्ष का श्रीराम के वनगमन के मार्ग में तथा उनके वन में निवास के समय बहुलता से उल्लेख किया है।

श्री पार्वती जी पूर्व जन्म में दक्ष प्रजापति की कन्या थीं और उनका नाम सती था। एक बार त्रेताकाल में जब श्रीमहादेव अगस्त्य मुनि के आश्रम से सती जी के साथ लौट रहे थे, उसी समय श्रीराम जी लक्ष्मण जी के साथ सीता जी की खोज में रोते-बिलखते, इधर-उधर घूमते आ रहे थे। उन्हे देखकर भगवान् भोलेनाथ ने उनको 'जय सच्चिदानन्द' कहकर दूर से ही प्रणाम किया। माता सती को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह साधारण सा मनुष्य जो अपनी पत्नी के लिए इतना रो रहा है, बिलख-बिलख कर खगों-मृगों से पता पूछ रहा है, वह भला सच्चिदानन्द कैसे हो सकता है? उन्होंने अपनी शंका श्री शंकर जी से कहा। श्री महोदव को समझते देर नहीं लगी कि सती जी प्रबल माया कि शिकार हो गयी हैं। उन्होंने सती जी से कहा कि तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं ले लेती हो? तब तक मैं इसी वट वृक्ष के नीचे बैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

जौं तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीक्षा लेहू॥
तब लगि बैठि अहउँ बट छाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ॥

बालकाण्ड, ५१/०७

सती जी को माया से ग्रसित जान श्री शंकर जी चिन्तित हो गये और अपनी चिन्ता को कम करने के लिए उन्होंने वट वृक्ष का आश्रय लिया। आगे चल कर जब श्रीसती हिमांचल की पुत्री (पार्वती) के रूप में जन्म लीं और फिर श्री शिव जी से उनका विवाह हुआ तब वह अपने पूर्व जन्म की शंका का समाधान भगवान् शंकर से प्राप्त करने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करती रहीं। वह अवसर कैलाश पर्वत

*सेवा निवृत्त प्रधानाचार्य, महाराणा प्रताप इण्टर कालेज गोरखपुर।

पर आ भी गया। परम रमणीक कैलाश पर्वत पर एक विशाल वट-वृक्ष था। वह सभी समय, सभी ऋतुओं में नित नूतन तथा आकर्षक बना रहता था। वहां तीनों प्रकार की हवाएं बहती थीं तथा उसकी छाया सुखकर रहती थी। उसके लाल-लाल फल जाड़े के समय सूर्य की अरूणाभ किरणों की तरह उष्मा का संचार करते थे, नीले पत्ते गर्मी में शीतलता प्रदान करते थे और सघन पत्ते वर्षाकाल में पानी से रक्षा करते थे। हर प्रकार से सुखद समझकर श्री महोदव ने अपने हाथ से नागरिपु-छाल वृक्ष के नीचे बिछाकर आसन लगा लिया। अपने आराध्य देव को सहज स्थिति में देखकर माता पार्वती जी उनके समीप जाकर बैठ गयीं और अपने पूर्व जन्म की शंका समाधान सम्बन्धी प्रश्न उनके सामने विनम्रता से रख दिया-

परम रम्य गिरिवर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू ॥
तेहि गिरि पर बट बिटप विसाला। नित नूतन सुन्दर सब काला ॥
त्रिविध समीर सुसीतल छाया। सिव विश्राम बिटप श्रुति गाया॥
पारवती भल अवसर जानी। गई सम्भु पहि मातु भवानी ॥
जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौं प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना॥

यहाँ विचाणीय बात यह है कि जब सती जी को शंका हुई तब भी भगवान् शंकर वट वृक्ष के नीचे बैठे और आज जब उसी शंका का पार्वती जी को समाधान देना है, तब भी वह कैलाशगिरि पर वट- वृक्ष के नीचे ही बैठे हैं। वेद कहते हैं- 'सिव विश्राम विटप श्रुति गया।' वट वृक्ष एक दीर्घजीवी एवं विशाल वृक्ष है। धार्मिक मान्यता के अनुसार यह त्रिमूर्ति अर्थात् विष्णु, ब्रह्म और महेश का प्रतीक है। इसकी छाल में विष्णु, जड़ में ब्रह्मा तथा शाखाओं में शिव का निवास होता है।

वट-वृक्ष पर शंकर जी निवास करते हैं। श्रीराम जी भगवान् शंकर को अपना गुरु मानते हैं। अत: वन की यात्रा के प्रसंग में जब-जब श्रीराम व्यथित होते हैं, माताओं की, भाईयों की, अयोध्यावासियों की, अथवा साथ में वन-यात्रा पर निकलीं सीता के सूखे होठ, भाल प्रान्त पर पसीने की बूंदें देखकर उनकी पीड़ा का अहसास करते हैं, तब-तब किसी वट-वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं-

तब रघुबीर श्रमित सियजानी। देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कन्दमूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई ॥

अयोध्याकाण्ड,१२३/३

अयोध्या से बाहर निकल कर जनकनन्दिनी अभी वन-मार्ग पर दो डग भी नहीं चली थीं कि उनके भाल पर पसीने की बूंदें झलकने लगी तथा उनके कोमल होठ सूख गये। वह विकल हो जाती हैं और प्रियतम से पूछती हैं कि हे नाथ अभी और कितनी दूर चलना है। कितनी दूर और चलकर आप पर्ण कुटी बनाएंगे? इसी बीच ग्राम बधुएं अनुपम सौंदर्य का रसपान करने के बहाने एक वट-वृक्ष की छाया तले कोमल पत्ते तथा घास-फूस डालकर श्री राम, सीता व लक्ष्मण से कुछ देर विश्राम करने का आग्रह करती हैं।

श्रीराम ने प्रिय सीता को श्रमित जाना और बरगद के वृक्ष के नीचे एक घड़ी विश्राम करके ही आगे चले-

एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु, गवनब अबहिं की प्रात ॥
जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलम्बु कीन्ह बट छाहीं ॥

अयोध्याकाण्ड, ११४/०२

श्रीनिषाद राज, श्रीभरत एवं उनके साथ चित्रकूट में श्रीराम से मिलने और उनको वापस अयोध्या ले आने के लिए जा रहे समस्त अयोध्यावासियों को लेकर मार्ग दिखाते आगे-आगे चल रहे हैं। निषादराज दौड़कर पर्वत की एक ऊंची चोटी पर चढ़ जाते हैं। अपने अंगुली के संकेत से वह श्रीभरत को पवित्र मंदाकिनी नदी के तट पर उस स्थान को दिखाते हैं, जहाँ चार वृक्ष पाकड़, जामुन, आम तथा तमाल के बीच स्थित विशाल बरगद के पेड़ के नीचे श्रीराम ने अपनी पर्ण कुटी बनाई थी, क्योंकि वे अपने गुरु शंकर जी के निवास वट-वृक्ष के नीचे ही रकहर अपने वनवास का समय व्यतीत कर सुख पूर्वक रहना चाहते थे-

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेसि भरत सन भुजा उठाई।
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जम्बु रसाल तमाला॥
तिन्ह तरुवरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा ।

हे भरत जी! उस मनोहारी बरगद के वृक्ष के पत्ते नीले और सघन हैं, फल

लाल-लाल हैं, छाँह सघन है। इस प्रकार यह वट-वृक्ष सब ऋतुओ में सुख देने वाला है। मानो ब्रह्मा ने प्रकृति का एक अनुपम वितान रच दिया है। पाकड़, जामुन, आम और तमाल के बीच वट वृक्ष मिलकर शिवपंचायतन बना रहे हैं। यह साक्षात् जटाधारी शिव हैं जो पञ्चमुखी होकर अपने इष्ट राम की सेवा के लिए यहां विराजमान हैं। चार वृक्ष पाकड़, जामुन, रसाल और तमाल कमशः मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के प्रतीक हैं। वट-वृक्ष को आत्मा कहा गया है। जहाँ आत्मा का निवास है, परमात्मा वहीं रहता है।

पूरा अयोध्या समाज, माताओं, भाइयों भरत और शत्रुघ्न तथा महाराज जनक को चित्रकूट से विदा करने के पश्चात् श्रीराम, सीता और लक्ष्मण उनकी वियोग की पीड़ा से व्याकुल हो गये। उस वन प्रदेश में उनको कोई सान्त्वना देने वाला भी नहीं था। फिर श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण के साथ अपने इष्ट महादेव के निवास वाले बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ कर अपनी पीड़ा कम किया-

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं । प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥

चित्रकूट छोड़ने के पश्चात् श्रीराम मुनि अगस्त्य जी के आश्रम पर उनसे मिले और उनका आशीर्वाद लेकर अपनी अगली पर्णकुटी दण्डकारण्य क्षेत्र के पञ्चवटी नामक स्थान पर बनाए। यहां पर वट के पाँच वृक्ष हैं जिनके मूल में पाँच सरस्वती कुण्ड हैं। मुनि अगस्त्य जी ने पञ्चवटी को ठहरने हेतु उपयुक्त एवं परम मनोहर स्थान बताया-

हे प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊँ।

अरण्यकाण्ड, १२/१५

पञ्चवटी में रहकर प्रभु ने अपने आराध्य भगवान् शंकर का सामीप्य पाया और देवताओं का कार्य किया। इस प्रकार निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वन-मार्ग में अथवा वन-निवास में श्रीराम वट वृक्षों के नीचे ही विश्राम किए अथवा अपनी पर्णकुटी बना कर ठहरे ।

■

योगः स्वस्थ जीवन से परमात्मा के मिलन तक

*आचार्य नवनीत

योग भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। यह केवल शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि मन, शरीर और आत्मा को संतुलित करने की एक पूर्ण जीवन पद्धति है। योग का अर्थ है-'जोड़ना', अर्थात् आत्मा का परमात्मा से मिलन। आज के व्यस्त और तनावपूर्ण जीवन में योग की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। यह न केवल हमें स्वस्थ रखता है, बल्कि मानसिक शांति और आत्मिक संतुलन भी प्रदान करता है।

१ :- योग के प्रकार

योग कई प्रकार के होते हैं, जिनमें प्रमुख हैं:

हठयोग, राजयोग, कर्म योग, ज्ञानयोग, भक्तियोग

हर योग का अपना अलग महत्त्व है, लेकिन सभी का लक्ष्य एक ही है-आत्मिक शांति और आत्म-साक्षात्कार।

हठयोग, योग की एक प्राचीन और अत्यंत प्रभावशाली शाखा है, जिसका मुख्य उद्देश्य शरीर और मन को शुद्ध करके ध्यान और आध्यात्मिक साधना के लिए तैयार करना है।

महायोगी श्रीगोरखनाथ जी ने हठयोग को केवल साधना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे एक व्यावहारिक जीवन पद्धति बनाया । उनकी शिक्षा में शरीर, प्राण और मन को शुद्ध करके आत्मज्ञान प्राप्त करने पर जोर दिया गया है।
उनकी रचनाएँ जैसे गोरक्षशतक और सिद्ध सिद्धांत पद्धति हठयोग के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

मनः स्थिरं यदा भवेत् प्राणोऽपि स्थिरतां व्रजेत्।
प्राणे स्थिरे मनः स्थिरं ततो योगी न संशयः॥

जब मन स्थिर होता है तो प्राण भी स्थिर हो जाता है। प्राण और मन के नियंत्रण से योगी उच्च अवस्था को प्राप्त करता हैख़यही हठयोग का मूल उद्देश्य है।
"हठ" शब्द दो भागों से मिलकर बना है- ह (सूर्य / प्राण शक्ति), ठ (चंद्र /

*योग एवं अध्यात्म अध्येता

मानसिक शक्ति)

हठयोग का अर्थ है- सूर्य और चंद्र, प्राण और मन का संतुलन।

हठविद्या परं गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम् ।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता।।

अर्थात् हठयोग की विद्या गुप्त रखने योग्य है। इसे साधना से प्राप्त करने पर ही सिद्धि मिलती है, केवल दिखावे से नहीं।

योग और आध्यात्मिकता

योग केवल शरीर तक सीमित नहीं है, यह आत्मा की शुद्धि का भी मार्ग है। नियमित योग और ध्यान से मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकता है।

समत्वं योग उच्यते।

श्रीमद्भगवद्गीता २.४८

अर्थात् सुख-दुख में समान भाव रखना ही योग कहलाता है।

योग के अंग -योग के आठ अंग होते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, एवं समाधि।

महायोगी गुरु गोरखनाथ जी ने कहा है कि यम और नियम प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के अभिन्न अंग हैं; इसलिए उन्हें अपने जीवन और दिनचर्या में अवश्य शामिल करना चाहिए।"

प्राणायाम :- प्राण ही जीवन है। यदि प्राण निकल जाये तो व्यक्ति मृतप्राय बन जाता है। श्वास को लेने और छोड़ने को प्राणायाम कहते हैं। जो इसका अंदर बाहर नियंत्रण करने का सरलता से अभ्यास करता है, उसका शरीर सुंदर, स्वस्थ, शक्तिशाली बनकर आयु को बढ़ाता है। श्वास के आधार पर अशुद्ध रक्त हृदय में जाता है और साफ होकर सारे शरीर में जाकर शक्ति का संचार करता है।

प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ में किसी उत्तम गुरु के सान्निध्य में करना चाहिए ये जितनी सरल प्रक्रिया है उतनी ही कठिन भी है यदि प्रतिदिन दो घंटे बाद केवल दो मिनट के लिए प्राणायाम किया जाए तो व्यक्ति के चेहरे पर चमक और शरीर में एक नयी स्फुर्ति आ जाएगी ।

प्राणायाम का समय धीरे-धीरे बढ़ना चाहिए जिससे काम, क्रोध, लोभ,

मोह, अहंकार का नाश हो जाता है। मानसिक शांति प्राप्त होती है। हृदय शुद्ध और पवित्र हो जाता है। बुढ़ापा दूर हो जाता है। पाचन क्रिया सुंदर बनती है। यम-नियमों का पालन करते हुए शुद्ध हृदय से प्राणायाम करके अष्टचक्रों को भेदन करने से योगी अपना 'तीसरा नेत्र' खोल सकता है। कुण्डलिनी जागृत की जाती है।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

जब तक प्राण (श्वास) चंचल है, तब तक मन (चित्त) भी चंचल रहता है। जब प्राण स्थिर हो जाता है, तो मन भी निश्चल हो जाता है, जिससे योगी को जड़ स्थिरता (स्थाणुत्व) प्राप्त होती है; इसलिए योगी को प्राणों (श्वास) को नियंत्रित (प्राणायाम) करना चाहिए ।।

समाधि:- समाधि की भी दो श्रेणियाँ हैं : सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधि वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मितानुगत होती है। असम्प्रज्ञात में सात्त्विक, राजस और तामस सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

जब ध्यान इतना गहरा हो जाए कि केवल ध्येय ही प्रकट रहे और साधक अपने अस्तित्व को भूल जाए, वही अवस्था समाधि कहलाती है सम्पूर्णता एकाग्रता और आत्मानुभूति की स्थिति। योग करने का मुख्य उद्देश्य केवल परमात्मा से मिलन ही है ।

बास सहेती सब जग बास्या, स्वाद सहेता मीठा ।

साच कहूँ तो सतगुर रूप सहेता दीठा ॥

ब्रह्म की सुगन्ध से सारा जगत सुगंधित है। उसके स्वाद से सारा जगत मीठा है। जिसको ब्रह्मानन्द का प्रास्वाद मिल जाता है उसके लिए संसार की प्रातीतिक कटुता मिट जाती है और जगत आनन्दमय (मीठा) हो जाता है। (क्योंकि समस्त जगत में उसे) उसी का रूप दिखाई देता है। (उसी से जगत सुन्दर है।)इस सत्य का विश्वास केवल सद्गुरु को ही हो सकता है। जिसे ब्रह्मानुभव नहीं वह इस पर विश्वास कैसे कर सकता है।।

२ :- योग के नियम -

(१) आसन शांत स्वभाव से करें। अनावश्यक तौर पर हँसना, बात-बात में क्रोध करना, चिंता करने से आसन का बुरा प्रभाव पड़ता है।

(२) आसन शुद्ध हवा में करना चाहिए। दुर्गन्धयुक्त स्थान में आसन न करें।

(३) आसन शौच निवृत्त होकर बिना कुछ खाये-पीये करना चाहिए।

(४) मिट्टी के तेल की रोशनी में आसन न करें, बिजली, सरसों का तेल अथवा मोमबत्ती का प्रयोग करना चाहिए।

(५) आसन करने का स्थान एकांत हो, वहाँ पर या तो आसन करने वाले साधक हों, या बताने वाले गुरु हों।

(६) तख्त या ऊँचे स्थान पर आसन करने में सावधानी बरतें, असावधानी से गिरने का भय रहता है।

(७)जहाँ मच्छर, मक्खियाँ आदि बैठती हों, वहाँ आसन नहीं करना चाहिए।

३ :-योग से रोग निवारण -आज की आधुनिक परिस्थितियों में मनुष्य सबसे ज्यादा मानसिक और शारीरिक रोग से ग्रस्त है अगर हम प्रतिदिन शुष्क व्यायाम, प्राणायाम और सूर्य नमस्कार करते हैं तो हम विभिन्न प्रकार के रोगों से बच सकते है कुछ मुख्य आसन जो आज के रोगों से बचा सकते हैं-

(१) सिर संबंधित समस्याओं में :- सर्वांगासन , चंद्रासन, शीर्षासन

(२) मधुमेहः- धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, सुप्तवज्रासन, अर्धवक्रासन, सूर्य नमस्कारासन, नौकासन।

(३) गैस : जानुशिरासन, खगासन, वज्रासन, पवनमुक्तासन।

(४) मोटापाः- धनुरासन , त्रिकोणासन , शलभासन , पादहस्तासन, नाड़ीशोधन प्राणायाम, ।

(५) संधिशोध कमर दर्द (जोड़ों का दर्द) : संतुलन आसन, त्रिकोणासन, गोमुखासन, और सेतुबंध आसन । भुजंगासन, वृक्षासन, उष्ट्रासन, मत्स्यासन,

(६) शक्ति विकास : वृश्चिकासन, मयूरासन, दोलासन, चक्रासन।

(७) रक्तचाप की कमी :- वृश्चिकासन, मयूरासन, दोलासन, चक्रासन।

(८) अनिद्रा :- शीर्षासन, योगनिद्रा, शीतली व शीताकरी प्राणायाम, सर्वांगासन, हलासन।

(९) कब्ज :- जानुशिरासन, मयूरासन, चक्रासन, ताड़ासन, भुजंगासन, धनुरासन, भूमिपादमस्तकासन, सुप्त वज्रासन, कर्णपीड़ासन, पादहस्तासन, मत्स्यासन ।

४:- विशेष यौगिक क्रिया :- योगासनों का चुनाव रोग के अनुसार किसी अनुभवी गुरु से पूछकर या स्वयं के विवेक से निर्धारित करें ।

(१) कफ दोष - तेल नेती/रबड़ नेती/जल नेती करें

(२) पित्त दोष - कुंजल क्रिया/दंड धौति/वस्त्र धौति करें।

(३) वायु दोष - ठंडी पट्टी/मिट्टी की पट्टी/ठंडा कटि स्नान करें।

(४) मल विकार - गणेष क्रिया/वस्ति क्रिया/शंख प्रक्षालन करें।

(५) मूत्र विकार - ठंडे पानी की पट्टी/मेहन स्नान/पर्याप्त जल सेवन करें।

५ :- योग से हानि - योग से मुख्यतः कोई हानि नहीं है परन्तु सबसे पहले हमें अपने शरीर को जानना आवश्यक है किसी भी एक योगाचार्य के सान्निध्य में पहले योग अभ्यास करना चाहिए अगर हमें किसी प्रकार का गंभीर रोग है तो उस तरह के आसन हमें नहीं करने चाहिए या फिर किसी अच्छे प्रशिक्षक के द्वारा हमें वह सभी आसन करने चाहिए और अपने खान-पान पर विशेष ध्यान देने चाहिए जिससे हम सभी प्रकार के रोगों से मुक्त रहकर एक अच्छा स्वस्थ और लम्बा जीवन जी सकते हैं।

योग केवल एक अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला है। यदि हम प्रतिदिन थोड़ा समय योग को दें, तो हमारा जीवन स्वस्थ, संतुलित और आनंदमय बन सकता है। योग हमें सिखाता है कि बाहरी परिस्थितियों से ऊपर उठकर आंतरिक शांति कैसे प्राप्त की जाए।

शरीरं साधनं योगे शरीरं साधनं तपः।

शरीरं साधनं ज्ञानं शरीरं मोक्षसाधनम्॥

अर्थात् शरीर ही योग, तप, ज्ञान और मोक्ष का साधन है।

■

आयोजन विशेष

महाराणा प्रताप जयन्ती और मेधावी सम्मान

*डॉ. राकेश कुमार तिवारी

महाराणा प्रताप, शौर्य अदम्य साहस स्वाभिमान स्वधर्म तथा राष्ट्र के प्रति समर्पित व्यक्तित्व थे। वह अपने शौर्य एवं पराक्रम के द्वारा राष्ट्र प्रथम की भावना के साथ सदैव संघर्ष करते रहे। उनके व्यक्तित्व में स्वतंत्रता के साथ स्वाधीनता भी थी, या यह कहा जाए कि वह स्वाधीन चेतना के प्रतिमूर्ति थे, क्योंकि तत्कालीन महान शासक अकबर का साम्राज्य पूरे राष्ट्र पर था, लेकिन एक राज्य उसके अधीन नहीं था वह था महाराणा प्रताप का मेवाड़ राज्य। महाराणा प्रताप कभी अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं किये। महान शासक अकबर की महती इच्छा थी कि एक बार राणा प्रताप मेरे सामने सिर झुका देते, लेकिन उनकी यह इच्छा कभी पूर्ण नहीं हुई। उक्त वक्तव्य, हिंदूआ सूर्य महाराणा प्रताप की ४८६वीं जयंती एवं प्रतिभा सम्मान समारोह के अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में साहित्यकार एवं पूर्व प्राचार्य किसान पीजी कॉलेज सेवरही कुशीनगर के डॉ. वेद प्रकाश पांडेय द्वारा दिया गया। महाराणा प्रताप शील व शक्ति से समन्वित व्यक्तित्व थे क्योंकि शील के साथ शक्ति होना उसके शौर्य और पराक्रम की गाथा को चरितार्थ करती है। उन्होंने सम्मानित हुए छात्रों से कहा कि आज का समाज स्वच्छंद है। अपने लेखनी और कर्म पर विश्वास करें क्योंकि लेखनी तथा कर्म कभी मरते नहीं है। कर्म से ही व्यक्तित्व में निखार आता है। ऐसे ही कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व महाराणा प्रताप थे जिनकी मृत्यु होने पर उनके महान शत्रु अकबर के आंखों में आंसू आ गया। मुख्य अतिथि कुलपति मां विंध्यवासिनी विश्वविद्यालय मिर्जापुर प्रोफेसर शोभा गौड़ ने वीर सपूत हिंदूआ सूर्य पराक्रमी, वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप जी के चरणों में श्रद्धा सुमन प्रत्यर्पित कर कहा कि व्यक्तित्व की विशेषता स्मृतियों से आती है क्योंकि व्यक्ति कर्म और सदाचरण से ही महान बनता है। उन्होंने छात्रों से कहा कि ज्ञान सूचना और शिक्षा के आधार पर व्यक्तित्व विकास होता है। प्रयास करते रहना चाहिए क्योंकि प्रयासों से ही सफलता प्राप्त होती है। महाराणा प्रताप के माता-पिता और गुरुओं को भी नमन करना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा दिए गए शिक्षा संस्कार शौर्य पराक्रम और ज्ञान से ही वे महान बने। पूर्वजों के संस्कार आत्मविश्वास एवं आचरण से ही व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास होता है।

अध्यक्षीय उद्‌बोधन करते हुए महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद के उपाध्यक्ष राजेश मोहन सरकार ने कहा कि सन १९३२ में महान शौर्य पराक्रमी एवं स्वधर्म के

*प्रकाशन विभाग, श्रीगोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर

रक्षक महाराणा प्रताप के ही नाम पर शिक्षा परिषद की नींव पड़ी और इसका क्रमिक विकास अनवरत होता रहा और आज यह एक विशाल वट वृक्ष के रूप में प्रसारित होकर समाज को दिशा व दशा प्रदान कर रही है। आज के दिन हिंदुओं को महाराणा प्रताप के आदर्शो से सीखना चाहिए क्योंकि उनके आदर्शों से सदैव प्रेरणा प्राप्त होती है।

आभार व धन्यवाद ज्ञापन करते हुए महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद के वरिष्ठ सदस्य डॉ. शैलेंद्र प्रताप सिंह ने कहा कि व्यक्तित्व निर्माण में राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्र प्रेम अनिवार्य रूप से होनी चाहिए क्योंकि स्वाधीन संकल्पना के साथ ही व्यक्तित्व का विकास होता है। महाराणा प्रताप के जीवन से समाज व राष्ट्र के विकास में सदैव संलग्न रहने की प्रेरणा प्राप्त होती है। स्वागत उद्‌बोधन एवं प्रास्ताविकी उद्‌घोषणा महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. अजय कुमार पांडेय द्वारा किया गया। कार्यक्रम का प्रारंभ अतिथियों द्वारा विद्या की अधिष्ठात्री मां सरस्वती एवं हिंदूआ सूर्य महाराणा प्रताप के चित्र के सम्मुख पुष्पांजलि से हुआ।

संचालन श्रीमती प्रियंका सिंह एवं संयोजन प्राचार्य डॉ० अजय कुमार पाण्डेय द्वारा किया गया। इस अवसर पर महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद के संस्थाओं के प्रधानाचार्य शिक्षक एवं छात्र उपस्थित रहे। कार्यक्रम का समारोप वन्दे मातरम् से हुआ। महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद की समस्त शिक्षण संस्थाओं में हर्षोल्लास पूर्वक महाराणा प्रताप की जयन्ती मनायी गयी।

मेधावियों का हुआ प्रतिभा सम्मान

जयंती समारोह के साथ ही महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद की संस्थाओं के यूपी बोर्ड तथा सीबीएसई बोर्ड के हाई स्कूल तथा यूपी बोर्ड इंटरमीडिएट के टॉप १० के अंतर्गत कुल ३० मेधावी छात्रों को अतिथियों द्वारा प्रशस्ति पत्र एवं स्मृति चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया गया। सम्मानित होने वाली संस्थाओ के छात्रों में आदिशक्ति माँ पाटेश्वरी पब्लिक स्कूल तुलसीपुर के ३ विद्यार्थी, गुरू गोरक्षनाथ भरोहिया के ३ विद्यार्थी, महाराणा प्रताप सीनियर सेकेण्डरी स्कूल के ३ विद्यार्थी, महाराणा प्रताप कृषक इण्टर कालेज जंगल धूसड़ के ३ विद्यार्थी, महाराणा प्रताप इण्टर कालेज सिविल लाइन्स के ६ विद्यार्थी, दिग्विजयनाथ इण्टर कालेज चौक बाजार के ७ विद्यार्थी, दिग्विजयनाथ बालिका इण्टर कालेज चौक बाजार के १ विद्यार्थी, दुलहिन जगन्नाथ कुँवरि इण्टर कालेज टेकुआटार कुशीनगर १ विद्यार्थी, महाराणा प्रताप कन्या इण्टर कालेज रामदत्तपुर से १ विद्यार्थी तथा महाराणा प्रताप बालिका इण्टर कालेज सिविल लाइन्स के २ विद्यार्थी सम्मिलित रहे। ■

श्री गोरखनाथ मन्दिर के प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	मूल्य
1. गोरखदर्शन	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	150.00
2. महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ	डॉ. भागवती प्रसाद सिंह	80.00
3. नाथ योग	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	10.00
4. आदर्श योगी	रघुनाथ शुक्ल	40.00
5. महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
6. गोरखवानी	रामलाल श्रीवास्तव	210.00
7. गोरक्षसिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
8. श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	60.00
9. अमनस्क योग	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
10. गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
11. विवेक मार्तण्ड	रामलाल श्रीवास्तव	75.00
12. महार्थ मंजरी	रामलाल श्रीवास्तव	80.00
13. गोरखचरित	रामलाल श्रीवास्तव	120.00
14. हठयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
15. सिद्धसिद्धान्तपद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	150.00
16. योग रहस्य	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	25.00
17. योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	6.00
18. शाबर चिंतामणि	नित्यानाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ	7.00
19. योगी सम्प्रदाय -नित्यकर्म संचय	महन्त योगी आदित्यनाथ	90.00
20. गोरख चालीसा	श्री गोरखनाथ प्रकाशन	10.00
21. नाथसिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	70.00
22. नाथ पंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में	विष्णुदत्त कुकरेती	270.00
23. अमरकाय महायोगी गोरखनाथ	श्रीमती माया देवी	10.00
24. युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा	महन्त योगी आदित्यनाथ	12.00
25. गोरखनाथ और नाथसिद्ध	डॉ. अनुज प्रताप सिंह	230.00
26. गोरखदर्शन	विजय पाल सिंह	40.00
27. तन प्रकाश	श्री श्री 108 योगी चुन्नीनाथ जी	20.00
28. हठयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	150.00
29. योगिक षट्कर्म	महन्त योगी आदित्यनाथ	21.00
30. नाथ सिद्धों का तात्त्विक विवेचन	अनुज प्रताप सिंह	85.00
31. गोरखमहिमा	महेन्द्र नाथ गोस्वामी	30.00
32. सुभाषित त्रिशती	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
33. राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ (3 खण्ड)	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	1100.00
34. राजयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	150.00
35. Philosophy of Gorakhnath	A-K- Banerjee	175.00
36. An Introduction to Nath-Yoga	A-K- Banerjee	15.00
37. महन्त अवेद्यनाथ स्मृति ग्रन्थ	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	500.00
38. योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	500.00
39. योग एवं महायोगी गोरखनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	175.00
40. महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ	-	40.00
41. श्रीगोरखनाथ मन्दिर एवं गोरखपुर का इतिहास	-	40.00
42. योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	-	40.00
43. युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ	-	50.00
44. राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ	-	50.00
45. गोरखनाथ एवं उनका हिन्दी साहित्य	डॉ. कमल सिंह	175.00
46. गोरखनाथ एवं उनका भाषा अध्ययन	डॉ. उमल सिंह	195.00
47. गोरखनाथ हिन्दी के प्रथम कवि	डॉ. कमल सिंह	95.00
48. Experience of truth seeker	योगी शान्तिनाथ	50.00

एन.पी./जी.आर-१२५/१४ एन.पी./२९०७५/७६

पुनर्नवा

पुनर्नवा, साटी या विषखपरा के नाम से विख्यात यह वनस्पति वर्षा ऋतु में बहुतायत से पायी जाती है। शरीर की आन्तरिक एवं बाह्य सूजन को दूर करनेके लिये यह अत्यन्त उपयोगी है।

यह तीन प्रकार की होती है- सफेद, लाल एवं काली। काली पुनर्नवा प्रायः देखने में नहीं आती। शोथ (सूजन)-नाशक, मूत्रल तथा स्वास्थ्यवर्द्धक है।

पुनर्नवा कड़वी, उष्ण, तीखी, कसैली, रुच्य, अग्निदीपक, रूक्ष, मधुर, खारी, सारक, मूत्रल एवं हृदयके लिये लाभदायक है। यह पाण्डुरोग, विषदोष एवं शूल का भी नाश करती है।

पुनर्नवा - औषधीय प्रयोग

(१) नेत्रों की फूली - पुनर्नवा की जड़ को घी में घिसकर नेत्र में लगाने से लाभ होता है।

(२) नेत्रों की खुजली (अक्षिकण्डू) - पुनर्नवा की जड़ को शहद अथवा दूध में घिसकर आँजने से लाभ होता है।

(३) नेत्रों से पानी गिरना (अक्षिस्त्राव) - पुनर्नवा की जड़ को शहद में घिसकर आँखों में लगाना लाभदायक है।

(४) रतौंधी - पुनर्नवा की जड़ को कांजी में घिसकर आँखों में आँजना लाभकारी है।

(५) खूनी बवासीर - पुनर्नवा की जड़ को हल्दी के काढ़े में देने से लाभ होता है।

(६) पीलिया - पुनर्नवा के पञ्चाङ्ग को शहद एवं मिस्त्री के साथ ले अथवा उसका रस या काढ़ा पिये।

(७) मस्तक-रोग एवं ज्वर-रोग - पुनर्नवा के पञ्चाङ्ग का २ ग्राम चूर्ण, १० ग्राम घी एवं २० ग्राम शहद में प्रातः-सायं खाने से लाभ होता है।

(८) जलोदर - पुनर्नवा की जड़ के चूर्ण को शहद के साथ खाने से लाभ होता है।

(९) सूजन - पुनर्नवा की जड़ का काढ़ा पीने एवं सूजन पर लेप करने से लाभ होता है।

(१०) पथरी - पुनर्नवा को दूध में उबालकर सुबह-शाम पीना चाहिये।

(११) विष- (क) चूहे का विष- सफेद पुनर्नवा मूल का २-२ ग्राम चूर्ण आधे ग्राम शहद के साथ दिन में दो बार लेने से लाभ होता है।

(ख) पागल कुत्ते का विष- सफेद पुनर्नवा के मूल का रस २५ से ५० ग्राम, २० ग्राम घी में मिलाकर रोज पिये।

(१२) विद्रधि (फोड़ा) - पुनर्नवा के मूल का काढ़ा पीने से कच्चा फोड़ा भी मिट जाता है।

(१३) अनिद्रा - पुनर्नवा के मूल का क्वाथ १०० मिलीलीटर दिन में दो बार पीने से निद्रा अच्छी आती है।

(१४) संधिवात - पुनर्नवा के पत्तों की भाजी, सोंठ डालकर खाने से लाभ होता है।

(१५) विलम्बित प्रसव - मूढगर्भ - थोड़ा तिल का तेल मिलाकर पुनर्नवा के मूल का रस, जननेन्द्रिय में लगाने से रुका हुआ बच्चा तुरंत बाहर आ जाता है।

(१६) गैस - पुनर्नवा के मूल का चूर्ण २ ग्राम, हींग आधा ग्राम तथा काला नमक एक ग्राम गरम पानी से ले।

(१७) मूत्रावरोध - पुनर्नवा का ४० मिलीलीटर रस अथवा उतना ही काढ़ा पिये। पेडू पर पुनर्नवा के पत्ते बफाकर बाँधे, १ ग्राम पुनर्नवाक्षार गरम पानी के साथ पीने से तुरंत फायदा होता है।

(१८) खूनी बवासीर - पुनर्नवा के मूल को पीसकर फीकी छाछ (२०० मिलीलीटर) या बकरी के दूध (२०० मिलीलीटर) के साथ पिये।

(१९) वृषण-शोथ - पुनर्नवा का मूल दूध में घिसकर लेप करने से वृषण की सूजन मिटती है।

(२०) हृदयरोग - हृदयरोग के कारण सूजन हो जाय तो पुनर्नवा के मूलका १० ग्राम चूर्ण और अर्जुन के छाल का १० ग्राम चूर्ण २०० मिलीलीटर पानी में काढ़ा बनाकर सुबह-शाम पीना चाहिये।

(२१) श्वास (दमा) - भोंरगमूल चूर्ण १० ग्राम और पुनर्नवाचूर्ण १० ग्रामको २०० मिलीलीटर पानी में उबालकर काढ़ा बनाये। जब ५० मिलीलीटर बचे तब उसमें आधा ग्राम शृंगभस्म डालकर सुबह-शाम पिये।

(२२) रसायन प्रयोग - हमेशा स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये रोज सुबह पुनर्नवा के मूल का या पत्ते का दो चम्मच (१० मिलीलीटर) रस पिये।

(ह० सैनी)

प्रकाशक :
श्री गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर-२७३०१५
web: www.gorakhnathmandir.in | E-mail: yogvanigmndr@gmail.com
दूरभाष: (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४, फैक्स: ९४५२५६९७१७